एवं बोधिसत्तो अन्तेवासिकानं मेत्ताभावनाय आनिसंसं कथेत्वा अपरिहीनज्झानो ब्रह्मलोके निब्बत्तित्वा सत्त संवट्टविवट्टकप्पे न इमं लोकं पुन अगमासि।

सत्था इमं धम्मदेसनं आहरित्वा जातकं समोधानेसि-"तदा इसिगणो बुद्धपरिसा अहोसि, अरको पन सत्था अहमेव अहोसि"न्ति।

अरकजातकं

●

१०. ककण्टकजातकं

नायं पुरे उण्णमतीति इदं ककण्टकजातकं महाउमङ्गजातके आविभविस्सति।

ककण्टकजातक

सन्थववग्गो

●

३. कल्याणवग्गो

१. कल्याणधम्मजातकं

कल्याणधम्मोति इदं सत्था जेतवने विहरन्तो एकं बधिरसस्सुं आरब्भ कथेसि।

पच्चुप्पन्नवत्थु

सावित्थियञ्हि एको कुटुम्बिको सद्धो पसन्नो तिसरणगतो पञ्चसीलेन समन्नागतो। सो एकदिवसं बहूनि सप्पिआदीनि भेसज्जानि चेव पुप्फगन्धवत्थादीनि च गहेत्वा "जेतवने सत्थु सन्तिके धम्मं सोस्सामी"ति अगमासि।

इस प्रकार बोधिसत्त्व अपने शिष्यों को मैत्री-भावना का फल कह ध्यान में अवस्थित, ब्रह्मलोक में पैदा होकर सात संवर्त-विवर्त कल्प तक फिर इस लोक में नहीं आये। शास्ता ने यह धर्मदेशना कह, जातक का परिणाम संघटित किया। उस समय ऋषि गण बुद्ध-परिषद् थी। अरक नाम का उपदेशक तो मैं ही था।

अरक जातक

●

१७०. ककण्टक जातक

"नायं पुरे ओनमतीति-....." यह (गाथा) ककण्टक जातक महाउम्मग जातक (संख्या ५४६) में आयेगी।

ककण्टक जातक

सन्थव वर्ग

●

३. कल्याणधम्म वर्ग

१७१. कल्याणधम्म जातक

"कल्याणधम्मो-....." यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक बहरी (बधिर) सास के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में एक कौटुम्बिक रहता था। वह श्रद्धावान् प्रसन्नचित था। वह त्रिशरण ग्रहण किये हुए था और पंचशील भी। एक दिन वह शास्ता से धर्म सुनने की इच्छा से घी आदि बहुत सी औषधियाँ, (घी, मक्खन आदि औषधि रूप में भिक्षु अपराह्न

तस्स तत्थ गतकाले सस्सु खादनीयभोजनीयं गहेत्वा धीतरं दट्ठकामा तं गेहं अगमासि, सा च थोकं बधिरधातुका होति। सा धीतरा सद्धिं भुत्तभोजना भत्तसम्मदं विनोदयमाना धीतरं पुच्छि—"किं, अम्म, भत्ता ते सम्मोदमानो अविवदमानो पियसंवासं वसती"ति। "किं, अम्म भत्ता ते सम्मोदमानो, अविवदमानो, पिय संवासं वसतीति। किं अम्म कथेथ यादिसो तुम्हाकं जामाता सीलेन चेव आचारसम्पदाय च, तादिसो पब्बजितोपि दुल्लभो"ति। उपासिका धीतु वचनं साधुकं असल्लक्खेत्वा "पब्बजितो"ति पदमेव गहेत्वा "अम्म, कस्मा ते भत्ता पब्बजितो"ति महासद्दं अकासि। तं सुत्वा सकलगेहवासिनो "अम्हाकं किर कुटुम्बिको पब्बजितो"ति विरविंसु। तेसं सद्दं सुत्वा द्वारेन सञ्चरन्ता "किं नाम विरेत"न्ति पुच्छिसु। "इमस्मिं किर गेहे कुटुम्बिको पब्बजितो"ति। सोपि खो कुटुम्बिको दसबलस्स धम्मं सुत्वा विहारा निक्खम्म नगरं पाविसि।

अथ नं अन्तरामग्गेयेव एको पुरिसो दिस्वा "सम्म, त्वं किर पब्बजितोति तव गेहे पुत्तदारपरिजनो परिदेवती"ति आह। अथस्स एतदहोसि— "अयं अपब्बजितमेव किर मं 'पब्बजितो'ति वदति, उप्पन्नो खो पन मे कल्याणसद्दो न अन्तरधापेतब्बो, अज्जेव मया पब्बजितुं वट्टती"ति ततोव निवत्तित्वा सत्थु सन्तिकं गन्त्वा "किं नु खो, उपासक, इदानेव बुद्धुपट्ठानं कत्वा गन्त्वा इदानेव पच्चागतोसो"ति वुत्ते तमत्थं आरोचेत्वा "भन्ते, कल्याणसद्दो नाम उप्पन्नो नं अन्तरधापेतुं वट्टति, तस्मा पब्बजितुकामो हुत्वा आगतोम्ही"ति आह। सो पब्बज्जञ्च उपसम्पदञ्च लभित्वा सम्मा पटिपन्नो नचिरस्सेव अरहत्तं पापुणि। इदं किर कारणं भिक्खुसङ्घे पाकटं जातं। अथेकदिवसं धम्मसभायं भिक्खू कथं समुट्ठापेसुं—"आवुसो, असुको नाम कुटुम्बिको 'उप्पन्नो कल्याणसद्दो न

काल में भी ग्रहण कर सकता है) पुष्प, सुगन्धियाँ तथा वस्त्र लेकर जेतवन गया। उसके वहाँ गये रहने पर (उपस्थित रहने पर) सास खाद्य-भोजन ले लड़की को देखने की इच्छा से (उसके) घर आयी। वह कुछ बहरी थी। जब लड़की के साथ खाना खा चुकी, तो (भोजनोपरान्त) आराम करते हुए उसने लड़की से पूछा–'अम्म! क्या तेरा पति तुमसे प्रसन्न है ? क्या वह विवाद न करता हुआ (बिना झगड़ा किये) प्रेमपूर्वक रहता है ?" "अम्म! क्या कहना! जैसा तुम्हारा जँवाई (जामाता) है, उस प्रकार का शीलवान् तथा सदाचारी प्रव्रजित भी मिलना दुर्लभ है।"

उस उपासिका ने लड़की की सारी बातों पर भली प्रकार ध्यान न देकर केवल प्रव्रजित शब्द को सुन चिल्लाना शुरू किया–'अम्म! तुम्हारा स्वामी प्रव्रजित क्यों हो गया ?' उसकी बात सुन पूरे घर वाले रोने लगे–'हमारे घर का मालिक प्रव्रजित हो गया।' उनका रोना सुन द्वार से आने-जाने वाले लोग पूछने लगे कि रो क्यों रहे हैं ? "इस घर का मालिक प्रव्रजित हो गया है।" वह कौटुम्बिक भी बुद्ध का उपदेश सुन, विहार से निकल नगर में प्रविष्ट हुआ।

एक आदमी ने उसे मार्ग में ही देख कर कहा–'सौम्य! तुम्हारे घर पर तुम्हारे लड़के स्त्री आदि सम्बन्धी रो रहे हैं कि तुम प्रव्रजित हो गये।' उसने सोचा–मैं प्रव्रजित नहीं हूँ, तो भी मुझे लोग प्रव्रजित समझ रहे हैं। मेरी प्रशंसा होने लगी है। इस अवसर को व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिए। आज ही मुझे प्रव्रज्या ग्रहण करनी चाहिए। वह वहीं से वापस लौट कर शास्ता के पास गया। शास्ता ने पूछा–"उपासक! अभी तुम बुद्ध की सेवा में आकर लौटे और तुरन्त फिर आये हो ?" उसने इस प्रकार कह निवेदन किया–"भन्ते! मेरी प्रशंसा होने लगी है। इस शुभ-नाम को गँवाना नहीं चाहिए। इसलिए मैं प्रव्रजित होने की इच्छा से आया हूँ।" प्रव्रज्या और उपसम्पदा प्राप्त कर वह भली भांति जीवन व्यतीत करता हुआ थोड़ी ही देर में (अल्पकाल में ही) अर्हत् हो गया। यह बात भिक्षुसंघ में प्रकट (ज्ञात) हुई। एक दिन धर्म-सभा में भिक्षुओं ने बातचीत प्रारम्भ

अन्तरधापेतब्बो'ति पब्बजित्वा इदानि अरहत्तं पत्तो'ति। सत्था आगन्त्वा "काय नुत्थ, भिक्खवे, एतरहि कथाय सन्निसिन्ना'ति पुच्छित्वा "इमाय नामा'ति वुत्ते "भिक्खवे, पोराणकपण्डितापि 'उप्पन्नो कल्याणसद्दो विराधेतुं न वट्टती'ति पब्बजिंसुयेवा'ति वत्वा अतीतं आहरि।

अतीतवत्थु

अतीते बाराणसियं ब्रह्मदत्ते रज्जं कारेन्ते बोधिसत्तो सेट्ठिकुले निब्बत्तित्वा वयप्पत्तो पितु अच्चयेन सेट्ठिट्ठानं पापुणि। सो एकदिवसं निवेसना निक्खमित्वा राजुपट्ठानं अगमासि। अथस्सु सस्सु "धीतरं पस्सिस्सामी'ति तं गेहं अगमासि, सा थोकं बधिरधातुकाति सब्बं पच्चुप्पन्नवत्थुसदिसमेव। तं पन राजुपट्ठानं गन्त्वा अत्तनो घरं आगच्छन्तं दिस्वा एको पुरिसो "तुम्हे किर पब्बजिताति तुम्हाकं गेहे महापरिदेवो पवत्तती'ति आह। बोधिसत्तो "उप्पन्नो कल्याणसद्दो नाम न अन्तरधापेतुं वट्टती'ति ततोव निवत्तित्वा रञ्ञो सन्तिकं गन्त्वा "किं, महासेट्ठि, इदानेव गन्त्वा पुन आगतोसी'ति वुत्ते "देव, गेहजनो किर मं अपब्बजितमेव 'पब्बजितो'ति वत्वा परिदेवति, उप्पन्नो खो पन कल्याणसद्दो न अन्तरधापेतब्बो, पब्बजिस्सामहं, पब्बज्जं मे अनुजानाही'ति एतमत्थं पकासेतुं इमा गाथा आह—

"कल्याणधम्मोति यदा जनिन्द, लोके समञ्ञं अनुपापुणाति।
तस्मा न हिय्येथ नरो सपञ्ञो, हिरियापि सन्तो घुरमादियन्ति।।

की—आयुष्मानों, अमुक कौटुम्बिक (गृहस्थ) ने सोचा—उसकी जो प्रशंसा होने लगी है, इस शुभ-नाम का लोप नहीं होना चाहिए। वह प्रव्रजित हो कर अर्हत् हो गया। शास्ता ने आकर—"भिक्षुओ! बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" पूछा, "अमुक बातचीत" कहने पर, शास्ता ने 'भिक्षुओ, प्राचीन समय में पण्डित जन भी यही सोचकर कि जो प्रशंसा होने लगे उस शुभ-नाम का लोप नहीं होने देना चाहिए, प्रव्रजित हुए।' इतना कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी-नृप ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व एक सेठ के घर में पैदा हुए। बड़े होने पर पिता के निधनोपरान्त सेठ का पद मिला। वह एकदिन घर से निकल राजा की सेवा में पहुँचा। उसकी सास अपनी लड़की को देखने की इच्छा से उसके घर आयी। वह कुछ बहरी थी। आगे की सम्पूर्ण कथा वर्तमान-कथा के सदृश ही है। राजा की सेवा करके अपने घर लौटते समय एक आदमी ने उसे देखकर कहा—'तुम्हारे घर पर सब लोग रो-पीट रहे हैं कि तुम प्रव्रजित हो गये।' बोधिसत्त्व ने सोचा कि यदि प्रशंसा होने लगी है, उस शुभ-नाम को नष्ट नहीं होने देना चाहिए। वह वहीं से लौट कर राजा के पास पहुँचा। राजा ने पूछा—"महासेठ! अभी जाकर अभी फिर क्यों लौट आये?" 'देव! घर के लोग मुझ अप्रव्रजित को ही प्रव्रजित हुआ समझ कर रो-पीट रहे हैं। यह जो मुझे शुभ-नाम मिला है, इसको लुप्त होने देना उचित नहीं। मैं प्रव्रजित होऊँगा। मुझे प्रव्रजित होने की आज्ञा दें।" सेठ ने इस भाव को प्रकट करने वाली दो गाथाएँ कहीं—

हे राजन्! जब लोक में किसी की कीर्ति होती है, उसे शुभ-नाम मिलता है, तो बुद्धिमान् जन को उसे छोड़ना नहीं चाहिए। श्रेष्ठ पुरुष लज्जा से भी (प्रव्रज्या-) धुर (लक्ष्य) को प्राप्त करते है। हे राजन्! आज मुझे वह कीर्ति प्राप्त हुई है, शुभ-नाम मिला है। उसे देखकर मैं प्रव्रजित होऊँगा। मुझे काम-भोगों की इच्छा नहीं रही।

"सायं समञ्ञा इधमज्ज पत्ता, कल्याणधम्मोति जनिन्द लोके।
ताहं समेक्खं इध पब्बजिस्सं, न हि मत्थि छन्दो इध कामभोगे"ति ।।

तत्थ कल्याणधम्मोति सुन्दरधम्मो। समञ्ञं अनुपापुणातीति यदा सीलवा कल्याणधम्मो पब्बजितोति इदं पञ्ञत्तिवोहारं पापुणाति। तस्मा न हिय्येथाति ततो सामञ्ञतो न परिहायेथ। हिरियापि सन्तो धुरमादियन्तीति, महाराज, सप्पुरिसा नाम अज्झत्तसमुट्ठिताव हिरिया बहिद्धसमुट्ठितेन ओत्तप्पेनपि एतं पब्बजितधुरं गण्हन्ति। इधमज्ज पत्ताति इध मया अज्ज पत्ता। ताहं समेक्खन्ति तं अहं गुणवसेन लद्धसमञ्ञं समेक्खन्तो पस्सन्तो। न हि मत्थि छन्दोति न हि मे अत्थि छन्दो। इध कामभोगेति इमस्मिं लोके किलेसकामवत्थुकामपरिभोगेहि।

बोधिसत्तो एवं वत्वा राजानं पब्बज्जं अनुजानापेत्वा हिमवन्तपदेसं गन्त्वा इसिपब्बज्जं पब्बजित्वा अभिञ्ञा च समापत्तियो च निब्बत्तेत्वा ब्रह्मलोकपरायणो अहोसि।

सत्था इमं धम्मदेसनं आहरित्वा जातकं समोधानेसि—"तदा राजा आनन्दो अहोसि, बाराणसिसेट्ठि पन अहमेव अहोसि"न्ति।

कल्याणधम्मजातकं

●

२. दद्दरजातकं

को नु सद्देन महताति इदं सत्था जेतवने विहरन्तो कोकालिकं आरब्भ कथेसि।

कल्याणधम्मो–सुन्दर धर्म, **समञ्ञ अनुपापुणातीति**–जब शीलवान्, सदाचारी, अथवा प्रव्रजित के लिए इस प्रकार की कीर्ति तथा लोक-व्यवहार आरम्भ हो जाता है। **तस्मा न हीयेथ**–उस श्रमणत्व (की ख्याति) से न हटे। **हिरियापि सन्तो धुरमादियन्तीति**–महाराज! सत्पुरुष अपने अन्दर से उत्पन्न लज्जा से, बाह्य-निन्दा से उत्पन्न भय के कारण भी इस प्रव्रज्या को ग्रहण करते हैं।

इधमज्ज–यहाँ मेरे द्वारा आज **ताहं समेक्खंति**–मैं उस श्रमणत्व को गुण-रूप से देखता हुआ **नहि मत्थि छन्दोति**–मुझ में इच्छा नहीं है, **इध कामभोगे**–इस संसार में वस्तु-कामना अथवा कामेच्छा।

बोधिसत्त्व ने यह कह राजा से प्रव्रज्या की आज्ञा ली। फिर हिमालय-प्रदेश में जा ऋषि-प्रव्रज्या-क्रम से प्रव्रजित हो अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर ब्रह्मलोकगामी हुए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना कह जातक का परिणाम संघटित किया।

उस समय राजा आनन्द था। वाराणसी सेठ तो मैं ही था।

कल्याणधम्म जातक

●